Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 1, January-2019, ISSN 2230-7540

नारी अस्मिता का सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में वर्णन

Savita[1]* Dr. Govind Dwivedi[2]

[1] Research Scholar OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Assistant Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

सार - भारतीय साज की रूपरेखा न केवल प्रधान रही बल्कि वहाँ स्त्री को मानवीय मानुषी समझने से ही इंकार कर दिया गया उसकी अनेक ऐसी परिभाषाएँ निश्चित कर दी गई जिसमें कभी तो वह देवी बनी, कभी दानवी कभी पत्नी, कभी माँ तो कभी पुत्री, अर्थात् उसके समग्र व्यक्तित्व को पुरुष निर्भर संबंधों में बांट दिया गया। स्त्री सामाजिक प्राणी होते हुए भी गृहविहीना ऐसी जीव है जिसका घर तो क्या राते-रात नाम भी बदल दिया जाता है वरन् एक नये वातावरण, परिवार संबंधी के बीच बचपन से युवा हुआ उसका तन न केवल अजनबी पति को सौंप दिया जाता है। अस्मिता का परिप्रेक्ष्य सामाजिक ही होता है। समाज से स्वयं के रिश्ते ही पहचान के बाद मनुष्य निजी तौर पर 'स्व' की खोज में उन्मुख होता है। सृष्टि के सभी तत्वों, तथ्यों तथा जीवन मर्म का पूरी तरह उपयोग और उपभोग होता मानव जीवन की सार्थकता है। हालांकि सृष्टि के समस्त प्राणियों को जीने का अधिकार है।

----------X----------

परिचय

नारी अस्मिता के सामाजिक संदर्भ में हिन्दी कथा साहित्य में अनेक कथाकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है और उनकी लेखनी से अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय स्त्री चरित्रों का निर्माण अमृता प्रीतम और कृष्णा सोबती के उपन्यासों में हुआ है। इन दोनों कथाकारों के उपन्यासों में प्रेमचंदीय लक्षण रेखा और जैनिन्द्रीय अतिभावुकता को पार कर स्त्री-चरित्रों ने व्यक्तित्व निर्मित की ओर कदम बढ़ाए स्त्री द्वरा स्त्री-जीवन की कथा लिखी गई। इनके अलावा उषा प्रियंवदा चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, मन्नू भण्डारी, शशिप्रभा शास्त्री, शिवानी आदि ने भी स्त्री की अस्मिता तथा स्त्री-मुक्ति के लिए साहित्य रचना की। इसके बाद भी अनेक कथाकारों में मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, राजी सेइ, प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा इत्यादि ने पारम्परिक मूल्यों के तिलस्म को तोड़ते हुए नये मान मूल्यों को गढ़ने वाले स्त्री-चरित्रों की रचना की है।

भारतीय समाज में नारी अपने जन्म से ही बेटी, बहन, पत्नी माता, प्रेमिका आदि विभिन्न रूपों में विशिष्ट महत्व रखती है। मातृत्व में महानता, स्वार्थ शून्यता, सहिष्णुता एवं क्षमा शीलता का भाव निहित होता है। वह घर एवं समाज में सुख-शान्ति, स्नेह, सहयोग एवं सद्भाव के वातावरण का निर्माण करती है। आलोच्यकाल के महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में माता, पत्नी, बहन बेटी, प्रेमिका सास, बहू आदि विविध रूपों में नारी अस्मिता का चित्रण इस प्रस्तुत है।

अमृता प्रीतम के उपन्यासों में स्पष्ट होता है कि इस समाज में स्त्री के प्रति क्रूरता दिखाने को पुरुषों ने 'पुरुषत्व' की संज्ञा दी है और स्त्री को पिटते और दबे रहने को स्त्रीत्व की। स्त्री के प्रति असामाजिक अनाचारों को जायज ठहराने का एक तर्क यह भी दिया जाता है कि स्त्री जैविक रूप से दब्बू है जबकि पुरुष में पाशविक प्राकृतिक रूप से होती है। अतः स्त्री पर क्रोध आने से उत्तेजित होने पर पुरुष का हिंसक हो उठना कतई स्वाभाविक है।

मनोवैज्ञानिक संदर्भ में नारी अस्मिता

साहित्य एवं मनोविज्ञान का पारस्परिक संबंध है। साहित्य मानव मन का सूक्ष्म अध्ययन एवं विश्लेषण करता है। मनोविज्ञान भी मानव के अन्तर्मन को उद्घाटित करता है। मनुष्य की स्वभावगत विशेषताओं का आंकलन मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष से होता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मनुष्य का 'मन' केन्द्र में होता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास का उसके आंतरिक जीवन को उजागर कर उसमें निहित स्वाभाविक शक्ति को पहिचानने का प्रयास करता है। डा॰ शशिभूषण

www.ignited.in

सिंघल ने मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में 'मानव' मनोभूमि के प्रत्यक्षीकरण को प्रमुख तत्व मानौ। इस संदर्भ में लिखते हैं कि- ''मानव मनोभूमि प्रेमचंद के चरित्र चित्रण में मानसिक गठन की भांति सुनिशिचत शक्ति नहीं है, वरन- अस्थिर और निर्माणाधीन प्रक्रियौ। यह स्वतः अध्ययन की वस्तु है। मानव मन की विचित्र सम्पूर्णता को प्रकाश लाने का श्रेय मनोविश्लेषण पद्धति के जनक सिगमंड फ्रायड के है। उन्होने मानव-मन की चेतन तथा अचेतन स्तरों को स्वीकार कर उनकी परस्पर क्रिया - प्रतिक्रिया के मार्मिक तथ्यों का अनुपम उद्घाटन किया है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास का पात्रों की मनोभूमि में विचरते हुए सहज मनोविश्लेषण की क्रिया में लीन हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार का उद्देश्य चेतना के शुद्ध, मौलिक तथा अनगढे स्वरूप को उपस्थित करना होता है। किन्तु आज के मनोवैज्ञानिक युग में असंतोष, असहिष्णुता एवं प्रचलित रूचि कया जा रहा है- "ऐसे उपन्यासों के केन्द्रीय पात्रों के कुंठाग्रस्त व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले तत्वों, घटनाओं तथा स्थितियों का सम्यक ज्ञान पा लेना ही नयी पीढ़ी के पाठकों की एक जटिल लेकिन अनिवार्य समस्या है।

मानव-चरित्र के अध्ययन हेतु मनोविज्ञान की अहम भूमिका है। मनुष्य की स्वभावगत विशेषताओं का आंकलन मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य से होता है। महादेवी वर्मा के अनुसार- "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शारीरिक विकास के विचार से और सामाजिक जीवन की व्यवस्था से स्त्री और पुरूष में विशेष अन्तर रहा है और भविष्य में रहेगा। यह मानसिक शारीरिक भोद न किसी भी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है न किसी हीनता का विज्ञापन करता है।' मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार हीनता ग्रंथि (मन की दुर्बलता) एवं श्रेष्ठता गं्रथि (अहंम) मनुष्य में कार्यरत होती है।

मानव समाज और हिन्दी उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का अध्ययन करने के पश्चात् मालूम होता है की दम्पत्ति में दोनों अथवा एक के विवाह पूर्व अथवा विवावहोत्तर प्रेम संबंध किसी क्षण भी दोनों के जीवन में पहले शंका, फिर विघटनकारी सिद्ध हुए हैं। अमृता प्रीतम के 'कैली, कामिनी और अनीता' उपन्यास की नायिका के साथ 'बक्सा' सुनिल, रामपाल उनके पति रूप में मिले लेकिन अनीता का पति रामपाल हमेशा अपने दाम्पत्य को संजीव मानता है।

आज की नारी परम्परागत सामाजिक मूल्यों तथा संस्कारों को नकारते हुए युगीन उपन्यासकारों ने भारतीय जीवन में आधुनिकीकरण के बदलते परिवेश से परस्पर मानवीय संबंधों में विघटित रूप की ओर अग्रसर होती है। इन उपन्यास लेखिकाओं ने समस्त प्राचीन सामाजिक संस्थाओं की सड़ी-गली रूढियो से टक्कर लेने को उद्यत उपन्यास लेखिकाओं ने स्वच्छंदता का उपभोग केवल पुरुष तक सीमित न रखते हुए नारी को भी परम्परागत श्रृंखलाओं की संकीर्णता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है।

आज की नारी में पाश्चात्य देशों की विभिनन विचारधाराओं सभ्यता संस्कृति के प्रभाव, वैवाहिक बंधन और आर्थिक आत्मनिर्भरता व शोषित एवं पीड़ित नारी को पुरुष की स्वेच्छाचारिता के रूप में बदलाव हुआ है। आज अपने स्वतंत्र जीवन को जीने के लिए लालायित है। स्त्री-पुरुष संबंधों मे समानाधिकार की मांग से परिवार एवं सामाजिक मान मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया के संबंध में क्रांति वर्मा ने लिखा है- "वर्तमान युग में बौद्धिकता के कारण नारी का दृष्टिकोण यथार्थवादी बनता चला गया है।" आज स्वच्छंद अभिव्यक्ति में बाधक सामाजिक मर्यादाओं-मान्यताओं की संगतता असंगतता पर विचार किया है।

नारी समानता

उपन्यास लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों के विषय परिवेश चुनाव अत्यन्त ही सावधानी पूर्वक किया है। उन्होंने नारी के बालस्वरूप से उसके अंतिम क्षण तक संपूर्ण व्यक्तित्व का चित्रण किया है। इन दोनों उपन्यासकारों का रचना का मुख्य उद्देश्य नारी उत्थान रहा है। इन्होंने नारी के यथार्थ दृष्टिकोण को अपनाकर नारी के वास्तविक रूप से रूबरू करवाया है। चन्द्र किरन सौनरेक्सा कहती है-नर और नारी जीवन में एक दूसरे के पूरक होते हैं दोनों की सुख-सुविधा परस्पर संतुलन पर आश्रित हैं। परिवार और समाज की उन्नति तभी संभव है जब समाज के दोनों अंग यानि पुरुष या स्त्री परस्पर प्रतिद्वंद्वी न हो अथवा अपने को स्वामी या सेवक समझने के स्थान पर सहयोगी साथी समझते हों। यह बात दूसरी है कि कोई काम दैनदिन जीवन के लिए देश या समाज के लिए अधिक लाभ दायक हो तो उसका महत्व पुरुष या नारी होने के नाते नहीं है। बुद्धि की दृष्टि से नर-नारी में कोई अंतर नहीं है। दोनों में बुद्धिमान और बुद्धिहीन जन्मते हैं और शारीरिक दृष्टि से नारी यदि थोड़ी दुर्बल भी हो तो आज के इस युग में मात्र दैहिक बल या पहलवानी अपने आप में कोई महानता नहीं, उसे आप एक कला मान सकते हैं।

नारी का अस्तित्व पुरुष मात्र के लिए है' इस आदम भावना को समाज बढावा दे रहा है। 19वीं शताब्दी में नारियों के लिए प्रोत्साहन का समय था। "स्त्रियों को भी पुरुषों के समान

www.ignited.in

अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि स्त्रियाँ भी मुक्त जन्मी हैं और उनको भी समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। हर नागरिक का कानूनी अधिकार भी समान होना चाहिए। साथ ही स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार भी मिलना चाहिए।''

भारतीय संदर्भ में पाश्चात्य जगत से आयातित भारतीय व पाश्चात्य समाज में परिवेशगत अंतर है और परिवेश किसी भी जीवन दृष्टि को विकसित करने की आधारशिला है। एक लेखक ने अत्यंत रोचक व महत्वपूर्ण बात कही है-नारी मुक्ति शब्द ही गलत है, बात नारी समानता की होनी चाहिए।

समाज और नारी

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही व्यक्ति का उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति, पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक कार्य संपादित होते हैं। सृष्टि के आदि काल से ही सभ्यता के साथ-साथ मनुष्य ने समाज संरचना में परिवर्तन किया है। इतिहास साक्षी है कि जब-जब भी मानवीय हित सामाजिक हितों से टकराये हैं समाज संरचना की परम्परागत धारणाएँ या आधारशिलाएँ टूटी हैं और मानव ने अपनी कल्पना का सुन्दर महल बनाकर खड़ा कर दिया। अमृता प्रीतम एवं कृष्णा सोबती के उपन्यासों का संपूर्ण चिंतन समाज सापेक्ष है इसमें भी व्यक्ति मूल्य प्रमुख है। जब समाज में सर्वत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष है चाहे वह व्यक्तिगत क्षेत्र में हो, वर्ग विशेष में हो अथवा सामाजिक क्षेत्र में तब यह निश्चित होता है कि महिला उपन्यासकारों का समाज संरचना के संबंध में भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज में नारी के अपने स्वप्न को पूरा करने की कल्पना द्वारा उपन्यासों में विभिन्न दृष्टिकोणों में अभिव्यक्त किया है।

अमृता प्रीतम ने अपने उपन्यासों में प्रेम की कल्पना सर्व जन-कल्याण की भावना में ही मानती है। ये एक ऐसे समाज की कल्पना की पक्षपाती है जो शोषणहीन वर्ग और जातिभेद से रहित हो। इस समाज में कोई भी किसी पर अत्याचार नहीं करेगा तथा न ही पद मोह से वशीभूत होकर किसी के अधिकारों का हनन करेगा। साहित्य समाज का दर्पण है, समाज स्त्री और पुरुष संबंधों की नींव पर आधारित है। अमृता प्रीतम के उपन्यासों में स्त्री और पुरुष दोनों ही निर्बाध स्वतंत्रता की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं। वे अब एक-दूसरे के पूरक न होकर प्रतियोगी बनते जा रहे हैं। पति-पत्नी के मधुर संबंधा की सार्थकता, कोमलता और माधुर्य अतीत के युग की बात बनते जा रहे हैं। इसी प्रकार कृष्णा सोबती ने वर्जनाविहीन समाज के नवीन वातावरण में दाम्पत्य के बदलते रूपों को देख-परखा है। परम्परागत दाम्पत्य जीवन पर लेखिका ने नवीन प्रश्नों को उभारा है। उपन्यास की नायिका रत्ती एक पुरुष की छाया में जीवन व्यतीत करने में विश्वास नहीं रखती। भिन्न-भिन्न स्थानों और परिवेश में विभिन्न पुरुषों से प्रेम-संबंध स्थापित करती है, अतृप्ति की अग्नि में समस्त जीवन जलती रहती है अपने इसी अतृप्त जीवन का परिचय देती हुई रती के इन शब्दों में और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

मानव समाज और हिन्दी उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों का अध्ययन करने के पश्चात् मालूम होता है की दम्पत्ति में दोनों अथवा एक के विवाह पूर्व अथवा विवावहोत्तर प्रेम संबंध किसी क्षण भी दोनों के जीवन में पहले शंका, फिर विघटनकारी सिद्ध हुए हैं। अमृता प्रीतम के 'कैली, कामिनी और अनीता' उपन्यास की नायिका के साथ 'बक्सा' सुनिल, रामपाल उनके पति रूप में मिले लेकिन अनीता का पति रामपाल हमेशा अपने दाम्पत्य को संजीव मानता है। ''जब अनीता अपने पति के पास बैठी होती तो दूसरी अनीता सागर के पास बैठी होती। यह बात अलग है कि जिस अनीता के पास शरीर का कोई अस्तित्व था, वह सभी को दिखाई दे सकती थी।'' जिस अनीता के पास शरीर का कोई अस्तित्व नहीं था, वह किसी को दिखाई नहीं दे सकता था। ''महक अब महक नहीं जो वकील साहब के प्रेम और विश्वास के सहारे दुनिया को भुलाए बैठी थी, जो अपने अस्तित्व की सार्थकता वकील साहब की खुशियों में तलाशती थी। बल्कि अब तो महक अपने हकों की मांग करती हुई वकील साहब से तर्क-विकर्त करने से नहीं चूकती।''

भारत धर्म प्रधान देश रहा है, इसकी नैतिकता की जड़े संस्कृति में गहरे तक धंसी हुई है। अतः समाज में दाम्पत्य का जो स्वरूप उखड़ा-उखड़ा दिखाई देता है उसको नष्ट करने में नारी की अंतरात्मा तैयार नहीं है। कृष्णा सोबती की नारी को उपन्यासों में अमानवीय अनाचार के विरूद्ध सोबती के प्रायः सभी चरित्र अपनी परिस्थितियों से लडती हुई कुछ महत्वपूर्ण सवाल उठाती है। क्या समाज में स्त्री जन्म इतना विध्वंसकारी है कि उसे 'मौहरा' देकर मार दिया जाए। समाज में पुरुष के दिलजोई का साधन 'स्त्री' अपने जीवन को सहज और संतुलित करने के लिए ऐसे विवाह दासता की जकड़न बनने के बावजूद अनिवार्य क्यों होते हैं। घर में एक स्त्री होने के बावजूद भी पुरुष बाहरी स्त्रियों के साथ 'शेयर' करने को तत्पर रहता है। स्त्री पत्नी या रखैल के रूप में ऐसे अनाचारों को सहने के लिए विवश क्यों है।

नारी अपने सामाजिक संबंधों के प्रति जागरूक, सामाजिक अराजकता, नैतिक उच्छृंखलता, खेखलापन, अनास्था, निराशा एवं कुण्ठाजनित नवीन मूल्यों को अपनाते हुए दर्शाया गया है।

www.ignited.in

आज की नारी परम्परागत सामाजिक मूल्यों तथा संस्कारों को नकारते हुए युगीन उपन्यासकारों ने भारतीय जीवन में आधुनिकीकरण के बदलते परिवेश से परस्पर मानवीय संबंधों में विघटित रूप की ओर अग्रसर होती है। इन उपन्यास लेखिकाओं ने समस्त प्राचीन सामाजिक संस्थाओं की सड़ी-गली रूढियो से टक्कर लेने को उद्यत उपन्यास लेखिकाओं ने स्वच्छंदता का उपभोग केवल पुरुष तक सीमित न रखते हुए नारी को भी परम्परागत श्रृंखलाओं की संकीर्णता से मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है।

आज की नारी में पाश्चात्य देशों की विभिनन विचारधाराओं सभ्यता संस्कृति के प्रभाव, वैवाहिक बंधन और आर्थिक आत्मनिर्भरता व शोषित एवं पीड़ित नारी को पुरुष की स्वेच्छाचारिता के रूप में बदलाव हुआ है। आज अपने स्वतंत्र जीवन को जीने के लिए लालायित है। स्त्री-पुरुष संबंधों मे समानाधिकार की मांग से परिवार एवं सामाजिक मान मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया के संबंध में क्रांति वर्मा ने लिखा है-"वर्तमान युग में बौद्धिकता के कारण नारी का दृष्टिकोण यथार्थवादी बनता चला गया है।" आज स्वच्छंद अभिव्यक्ति में बाधक सामाजिक मर्यादाओं-मान्यताओं की संगतता असंगतता पर विचार किया है।

नारी की महत्ता को समाजशास्त्रीय आधार मिलने पर नारी परिवार की इकाई बनी। परिवार तथा समाज के परिप्रेक्ष्य में उसकी व्यक्तिगत मान्यताओं को स्वीकृति प्राप्त होने पर सामाजिक मूल्यों में बदलाव आया है। संयुक्त परिवार का विघटन, विवाह के प्रति समकालीन दृष्टि प्रेम एवं यौन संबंधी नवीन नैतिकता, स्त्री-पुरुष संबंधों मे अलगाव के रूप में दिखाई देता है। आज सामाजिक संबंधों के नाम पर प्रेम, स्नेह करूणा-वात्सल्य सेवा इत्यादि भावनात्मक मूल्यों में कोरी कृत्रिमता रह गई है पाप-पुण्य की भावनाएँ धर्म से निर्धारित न होकर तार्किक आधार पाने को आतुर हैं। काम-भावना को शरीर की सहज स्वाभाविक भूख मानते हुए इसे नीति-अनीति, धर्म-अधर्म से जोड़ा जाना व्यर्थ माना जाने लगा है।

स्त्री पुरुष संबंधों के दायरे बदल गए हैं। कृष्णा सोबती के उपन्यासों में पतिव्रता नारी के साथ वेश्या जैसी नारी पात्रों का चित्रण किया गया है। 'डार से बिछुड़ी' उपन्यास में पाशों दीवानजी की पत्नी मालन बनकर घर आई। तो 'जिंदगीनामा' में बड़ी शाहनी अपने गौरव गरिमा के अनुकूल उदार, सहृदय, सहिष्णु, धार्मिक, परिश्रमी व्यवहार कुशल और आदर्श पत्नी है।

आज सामाजिक संबंध इतने बदल गए हैं कि भारतीय संस्कृति में मर्यादा, शील, लज्जा जैसे शब्द नारी के साथ इस कदर जेड़ दिए गए थे कि उसके बाहर नारी कल्पना भी नहीं कर सकती लेकिन नारी अब इन बंधनों से मुक्त हो रही है। जिस स्त्री को पुरुष वर्षों से वस्तु बनाकर भोगता रहा है। वह अब वस्तु से प्रमाण जीव बनकर खड़ी हो रही है। आज की नारी ने स्वतंत्र अस्तित्व को पाने के लिए समाज में संघर्ष किया है जो सामाजिक मूल्यों का विरोध कर व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयास करती हैं। आज सामाजिक संबंधों में इतना बदलाव आया है कि सभी व्यक्ति अकेलापन, ऊब, कुण्डा और बिखरते सामाजिक संबंधों की मार संपूर्ण समाज पर दिखाई दे रही है।

उपसंहार

नारी अस्मिता की परिभाषा किसी निश्चित वैचारिक फ्रेमवर्क के अन्तर्गत नहीं की जा सकती। ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों की खोज के बावजूद समाज में नवीन विकास और परिवर्तन अनेक अन्तर्विरोधों से युक्त हैं। परंपरा की विरासत और आधुनिकता का स्वीकार जिस निर्णायक क्षितिज की अपेक्षा रखता है, वह बहुत ही धुधला है। नारी अस्मिता अपने स्थूल रुप में नारी की वैयक्तिकता, व्यक्ति या मनुष्य के रुप में उसकी गरिमा, प्रतिष्ठा तथा पहचान है, जिसमें अपने जीवन पर खुद उसकी सत्ता होती है। नारी अस्मिता नारी के व्यक्तित्व की विशिष्ट एवं विलक्षण पहचान है जो उसके समाज की विलक्षण ऐतिहासिकता एवं वास्तविक अथवा मिथकीय अतीत से जोडती है। यह निजत्व का भाव है जिसमें नारी की इच्छा-अनिच्छा महत्वपूर्ण होती है। यह नारी में अहंभाव उत्पन्न करते हुए स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की ख्वाहिश भी व्यक्त करती है।

नारी अस्मिता आधुनिक युग का महत्वपूर्ण एवं केन्द्रीय प्रश्न है। नारी अस्मिता की अवधारणा ने पहली वार स्पष्ट रुप से यह उद्घोषणा की कि पुरुष से भिन्न नारी की अपनी इयत्ता है। उसका अलग अस्तित्व है, उसकी पहचान है एवं उसका स्वंतत्र व्यक्तित्व है। उसने दर्शन, इतिहास संस्कृति, समाज एवं परंपरा की अपनी दृष्टि से व्याख्या प्रस्तुत की ताकि प्रत्येक कोई यह जान सके कि नारी अस्मिता सिर्फ नारी के लिए नहीं बल्कि पुरुष के लिए एवं सम्पूर्ण समाज के लिए नितान्त आवश्यक है।

भारतीय पुनर्जागरण के समय समाज सुधारकों ने पहली बार समाज में नारियों की असमान स्थिति के विरोध में अपनी आवाज उठाई। उन्होने भोग्या एवं वस्तु समझी जाने वाली नारी को एक सम्मानजनक स्वरुप प्रदान करने की पहल की। उन्होने नारी की स्थिति में सुधार के प्रयासो की गंभीर

www.ignited.in

आवश्यकता समझी और नारियों की जागरुकता के लिए नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

1. गर्ग, शकुन्तला, महिला उपन्यासकारः मूल्य चेतना, अभिषेक प्रकाशन, 16 अरविन्द पार्क टोंक फाटक, जयपुर

2. जैबिक, शशि, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण, 1989

3. कुमार प्रेम, स्वतंत्रता परवर्ती हिन्दी उपन्यास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्करण, 1979

4. गणेशन(डॉ.), हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, संस्करण, 1962

5. राम, गोपाल, हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 1981

6. शर्मा, सुशीला(डॉ.), हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प, सिद्धुराम पब्लिकेशंस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1976

7. सुरेन्द्रन आर., स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1997

8. सिंहल, शशिभूषण, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ, विनोद पुस्तक मंदिर प्रकाशन, आगरा, संस्करण, 1988

9. त्रिपाठी, विनयमोहन, साठोत्तरी उपन्यासों में नारी परिकल्पना, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007

10. सिंह, रूपा (डॉ.), स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती,पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

Corresponding Author

Savita*

Research Scholar OPJS University, Churu, Rajasthan

savita21blb@gmail.com

www.ignited.in